शास्त्रार्थ मसूदा

शास्त्रार्थ मसूदा

ऋषि दयानन्द तथा आर्यसमाज-विषयक पुरातन सामग्री की शोध के प्रसंग में आर्यसमाज अजमेर द्वारा प्रकाशित ''**देशहितैषी**'' मासिक पत्र की संचिकायें देखने का अवसर मिला। यह पत्र **वैशाख** १९३९ वि० में प्रकाशित होना आरम्भ हुआ था। 'देश-हितैषी' के कतिपय अंकों में महर्षि दयानन्द के मसूदा (जिला अजमेर) ग्राम में निवास का विस्तृत विवरण उपलब्ध हुआ। मसूदा के अधिपति स्व० राव बहादुरसिंह जी, स्वामी दयानन्द के निष्ठावान् अनुयायी तथा भक्त थे। उन्हीं के आमन्त्रण पर स्वामीजी एकाधिक बार मसूदा गये थे। यद्यपि स्वामीजी के मसूदा पधारने तथा वहां जैन साधु सिद्धकरण से शास्त्रार्थ करने का विवरण पं० देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा संकलित तथा पं० घासीरामजी द्वारा लिखित श्री महाराज के जीवन-चरित्र में भी उपलब्ध होता है, परन्तु यह अत्यन्त संक्षिप्त है। 'देश-हितैषी' के निम्न अंकों में यह विवरण धारावाही रूप से प्रकाशित हुआ था—ज्येष्ठ १९३९ (अंक २ खण्ड १), श्रावण १९३९ (अंक ४ खण्ड १), भाद्रपद १९३९ (अंक ५ खण्ड १), आश्विन १९३९ (अंक ६ खण्ड १), कार्तिक १९३९ अंक (अंक ७ खण्ड १), मार्गशीर्ष १९३९ (अंक ८ खण्ड १), अर्थात् उक्त ६ अंकों में मसूदा के शास्त्रार्थों का वृत्तान्त प्रकाशित हुआ था। इस वृत्तान्त के प्रेषक पं० वृद्धिचन्द्र श्रीमाली नाम के एक श्रीमाली ब्राह्मण थे।

'**मसूदा के मंगल-समाचार**' शीर्षक से प्रकाशित इस विवरण में तीन शास्त्रार्थों का उल्लेख हुआ है। **प्रथम** शास्त्रार्थ जैन साधु सिद्धकरण तथा स्वामीजी के मध्य, **द्वितीय** राव बहादुरसिंहजी तथा ब्यावर निवासी पादरी बिहारीलाल के बीच, तथा **तृतीय** स्वामीजी एवं एक कबीर-पंथी साधु के बीच हुआ था। जैन साधु सिद्धकरण श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय की स्थानकवासी शाखा के अनुयायी थे। इस शाखा के साधु मुख पर श्वेत पट्टी बांधते हैं। राजस्थान में इन्हें '११ टोला' भी कहा जाता है। शास्त्रार्थ-विवरण के अतिरिक्त भी मसूदा के इस इतिवृत्त से ऋषि दयानन्द विषयक कतिपय महत्त्वपूर्ण बातों का परिज्ञान होता है। यथा—मसूदा में स्वामीजी

ने धर्म, राजनीति, पुनर्विवाह, सत्यशास्त्रादि विषयों पर १६ व्याख्यान तो अपने प्रथम बार के निवास के समय ही दिये थे। क्या ही अच्छा होता, यदि इन व्याख्यानों का विवरण उपलब्ध हो सकता। पादरी 'शूलब्रेड' तथा पादरी बिहारीलाल के समक्ष भी उनका व्याख्यान 'राजनीति' पर ही हुआ था। स्वामीजी के राजनैतिक विचार और भी स्पष्ट हो जाते, यदि हमें इन व्याख्यानों का विवरण उपलब्ध होता।

पं० वृद्धिचन्द-लिखित विवरण की भाषा को यथासाध्य उसी रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। जिसमें वह आज से १२९ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था। उस समय खड़ी बोली का गद्य पूर्णतया परिष्कृत नहीं था। शब्दों के स्वरूप तथा वर्तनी का निर्धारण भी नहीं हुआ था, और न विराम-चिह्नों का ही प्रयोग किया जाता था, तथा यत्र-तत्र विराम-चिह्न भी लगा दिए हैं, तथापि भाषा के पुराने रूप को देखा जा सकता है। यत्र तत्र आवश्यक पाद-टिप्पणियां भी दे दी गई हैं।

मसूदा रावसाहब के पुराने 'इतिवृत्त-संग्रह' में महर्षि-विषयक और भी महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध होने की पूर्ण सम्भावना है। मसूदा के सैकड़ों निवासी स्वामीजी के अमृतमय उपदेशों को सुनकर वैदिक-धर्म में दीक्षित हो गये थे। ऐसे लोगों में जैन मतावलम्बी कोठारी परिवार के लोगों की संख्या यथेष्ट थी। अत: इस विवरण में उल्लिखित उन लोगों के नामों की सूची भी महत्त्वपूर्ण है, जिन्होंने श्रीमहाराज के करकमलों से यज्ञोपवीत दीक्षा धारण की थी। हमारा प्रयास मसूदा-विषयक शेष सामग्री को भी प्रकाश में लाने का है। जिसके लिए आर्यसमाज के अनुसंधानप्रिय पाठकों को प्रतीक्षा करनी होगी।

शास्त्रार्थ-मसूदा (१)

यह शास्त्रार्थ जैन साधु सिद्धकरण के साथ हुआ था।

[पूर्व-पीठिका]

विदित होय के श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज के अजमेर में पदार्पण करने के समाचार राव बहादुरसिंहजी मसूदा के कर्णगत हुए। तत्काल ही उक्त रावसाहब ने श्री स्वामीजी महाराज को निमन्त्रण पत्र सहित श्री पण्डित वृद्धिचन्द्रजी को अजमेर भेजा। उक्त पण्डितजी ने रावसाहब का निमन्त्रण पत्र स्वामीजी को दे सर्वव्यवस्था कह सुनाई। तब स्वामीजी ने मसूदा की ओर पधारना स्वीकार किया। इसके पश्चात् जब अजमेर में स्वामीजी के व्याख्यानादि समाप्त हो चुके, तब उक्त महाराज ने अत्यन्त कृपा करके अपने प्रण के अनुसार आषाढ़ वदी १२, सं० १९३८ विक्रमी, बृहस्पतिवार को ९ बजे दिन के अजमेर स्टेशन से मसूदा की ओर प्रस्थान कर, नसीराबाद स्टेशन पर उतर, रथ पर चढ़ ९ बजे रात्रि को मसूदा में जा विराजे।

फिर आषाढ़ वदी ३०, सं० १९३८ विक्रमी से उक्त महाराजजी के व्याख्यान महलों में होने आरम्भ हुए। तात्पर्य यह कि १६ व्याख्यान अर्थात् प्रथम धर्म विषय, फिर राजनीति, पुनर्विवाह, सत्यशास्त्रादि और मोक्ष विषय में होकर फिर दो तीन दिवस इसी प्रकार बाहर बाग में आनन्द मंगल होते रहे। इसके पश्चात् अर्थात् आषाढ़ सुदी २ मंगलवार को पादरी शूलब्रेड और बाबू बिहारीलाल ईसाई नये शहर[१] (ब्यावर) से स्वामीजी से मिलने को आये। उक्त महाराज ने उक्त पादरी साहब और बाबूजी को आदर सहित बिठाया, फिर वार्तालाप होने लगा। फिर स्वामीजी ने प्रसंगानुकूल पादरी साहब से उनके धर्म विषय में प्रश्न किए, जिनका कुछ उत्तर न देकर कहने लगे कि स्वामीजी! मैं आपसे शास्त्रार्थ करने नहीं आया हूँ, वरंच आपके मुखारविंद से कुछ व्याख्यान सुनने की अभिलाषा है।

स्वामीजी ने कहा—बहुत अच्छा—मैं व्याख्यान देता हूँ, आप श्रवण

---

१. वर्तमान ब्यावर नगर को नया शहर भी कहा जाता है।

कीजिए। पादरी साहब बोले—मैं २० मिनट से अधिक नहीं ठहरूंगा, व्याख्यान दीजिए। फिर स्वामीजी ने राजनीति पर व्याख्यान दिया। इसके पश्चात् पादरी साहब ने स्वामीजी से पूछा कि वेदों में तो [नरमेध] और अश्वमेध लिखा है? स्वामीजी ने कहा—कि नहीं, वैसी बात वेदों में कहीं नहीं लिखी है। हमारे पास चारों वेदों के पुस्तक हैं, आप उनमें बतलाइये। पादरी साहब ने कहा मेरी पुस्तकें तो नये शहर (ब्यावर) में है। स्वामीजी ने कहा—किसी मनुष्य को भेज दो, ले आवेगा। पादरी साहब—इस समय नहीं मंगवा सकता, कारण अवकाश नहीं है। इतना कह नए शहर (ब्यावर) को चल दिए।

फिर स्वामीजी और रावसाहब ने जैनियों से, जो उस समय वहां उपस्थित थे, कहा—कि तुम लोग अपने किसी विद्वान् पण्डित वा मतावलम्बी को बुलाओ, उससे शास्त्रार्थ होगा। तब जैनियों ने कहा कि हम अपने साधु सिद्धकरण को बुलाते हैं, वे आप से शास्त्रार्थ करेंगे। फिर जैनियों ने उक्त साधु को आषाढ़ सुदी १०, सं० १९३८ वि० को पत्र भेजा, सो दूसरे दिन मसूदा में आ गया।

एक दिन अर्थात् आषाढ़ सुदी १३ को, जब स्वामीजी महाराज अपने नियमानुसार भ्रमण को गये, तो सिद्धकरण साधु से भी, जो शौचादि से निवृत्त होकर आये थे, मार्ग में भेंट हो गई। साधु ने स्वामीजी के निकट आकर कहा कि—आपका क्या नाम और कहां से पधारना हुआ? स्वामीजी ने उत्तर दिया—मेरा नाम दयानन्द सरस्वती है, और अजमेर से आया हूँ। फिर स्वामीजी ने कहा—आपका क्या नाम है, और कहां से आना हुआ? साधुजी ने कहा—मेरा नाम सिद्धकरण है, और सरवाड़ से आया हूँ। चार मास यहीं रहूंगा। स्वामीजी—यहां पर आप कहां ठहरे हैं? साधु ने कहा—एक उपासरे[1] में; स्वामीजी—क्या आप ही को जैनियों ने बुलाया है? साधु—हां, मुझ ही को। और स्वामीजी से कहा कि—आपका पेट तो बड़ा मोटा है, क्या इसमें ज्ञान भरा है? आप लोहे का तवा बांध लीजिए, नहीं तो फट जायेगा। स्वामीजी ने इसका उस समय उत्तर देना अनुचित समझ साधु से यह प्रश्न किया कि—आप लोग मुख पर पट्टी क्यों बांधते और गरम जल क्यों पीते हो? साधुजी ने कहा—जो आप भी मुख पर पट्टी बांधें, तो मैं इसका उत्तर दूं, अब इनमें परस्पर वादानुवाद

१. स्थानक वासी जैन साधुओं के ठहरने का स्थान उपासरा (उपाश्रय) कहलाता है।

हो ही रहा था कि रावसाहब ने जो बहुधा अपने महलों पर छत पर बैठे प्रातःकाल दूरवीक्षण द्वारा स्वामीजी को भ्रमण करते देखा करते थे, देखा कि किसी से स्वामीजी वार्ता कर रहे हैं। तत्काल ही रावसाहब अश्वारोहण हो स्वामीजी के निकट आ उपस्थित हुए। रावसाहब को देख साधु चलने लगा। तब रावसाहब ने साधुजी से कहा कि—ठहरो, प्रश्न करो, क्यों जाते हो? अन्त को रावसाहब के आते ही साधुजी चले ही गये, और स्वामीजी महाराज वा[1] राव बहादुरसिंहजी मार्ग में परस्पर वार्ता करते हुए निज स्थान को पधारे।

जैन साधु सिद्धकरण और स्वामीजी के प्रश्नोत्तर

फिर स्वामीजी ने श्रावण २ सं० १९३८ वि० को निम्नलिखित प्रश्न, पं० छगनलाल कामदार वा जोशी जगन्नाथ और सरदार वा (और) पण्डित लोगों के हस्ते सिद्धकरण साधु के पास भेजे। प्रश्न यह हैं—

१—जैन मतान्तर्गत तुम लोग ढूंढ़िये, जो मुख पर पट्टी बांधना अच्छा जानते हो, यह तुम्हारी बात विद्या और प्रत्यक्षादि प्रमाणादि की रीति से सिद्ध नहीं है। इसमें जो तुम ऐसा मानते हो कि—मुख की वायु से जीव मरते हैं। तो भी ठीक नहीं। क्योंकि जीव अजर-अमर है, ''और तुम भी ऐसा ही मानते होगे'' जो तुम कहो कि—जीव तो नहीं मरता, परन्तु जो उनको पीड़ा अर्थात् दुःख देवे वे पाप-भागी होते हैं। सो भी सर्वथा ठीक नहीं क्योंकि पीड़ा दिए विना किसी का निर्वाह नहीं हो सकता।

इसमें जो तुम कहते हो कि—जहां तक बन सके तहां तक जीवों की रक्षा करनी चाहिए, कारण सर्व वायु आदि पदार्थ जीवों से भरे हैं, इसलिए हम लोग मुख पर कपड़ा बांधते हैं कि मुख से उष्ण वायु निकलने से बहुत जीवों को दुःख और बांधने से थोड़े जीवों को कष्ट पहुंचता है। सो यह भी कहना आप लोगों का अयुक्त है, क्योंकि कपड़ा बांधने से जीवों को बहुत दुःख पहुंचता है। कारण यह है कि मुख पर कपड़ा बांधने से गरमी रुकने से उष्णता अधिक होती है। जैसे किसी मकान का दरवाजा बंद हो वा परदा डाला जाय, तो उसमें गर्मी अधिक होती है, और खुला रहने से कम होती है। इससे विदित होता है कि मुख पर कपड़ा बांधने से जीवों को अधिक पीड़ा होती है। इसलिए जो कोई मुख पर कपड़ा

१. 'वा' का प्रयोग सर्वत्र 'और' के अर्थ में हुआ है 'अथवा' के अर्थ में नहीं।

बांधते हैं, वे जीवों को अधिक पीड़ा पहुंचाने से अधिक पापी होते हैं। जो नहीं बांधते, वे उन बांधने वालों से अच्छे हैं।

किन्तु जब तुम मुख पर कपड़ा बांधते हो, तो मुख द्वारा वायु रुक कर नाक के छिद्र से अधिक वेग से जो बाहर निकलती है, वह जीवों के लिए अधिक दुःखदाई होती है। जैसे कोई मुख से अग्नि फूंके और कोई नली से, तो नली से वायु चारों ओर से रुक, अधिक बलवान् हो अग्नि में लगती है। इसी प्रकार नाक का वायु जीवों को अधिक पीड़ा पहुंचाता है। इससे तुम अधिक हिंसक हो।

जो तुम कहो कि—हम नाक और मुंह पर एक कपड़ा बांधेंगे। तो पूर्वोक्त रीति से मुख और नासिका दोनों की गरमी बढ़ कर द्विगुण हिंसा होगी। उससे मुख वा नासिका पर कपड़ा बांधना कदापि योग्य नहीं। दूसरे, कपड़ा बांधने से बोला भी ठीक-ठीक नहीं जाता। निरनुनासिक शब्दों को सानुनासिक[१] कर देना दोष है, उधर दुर्गन्ध भी अधिक बढ़ता है, क्योंकि शरीर के भीतर दुर्गन्ध है। शरीर से जितना वायु निकलता है, वह दुर्गन्धयुक्त ही है। जब वह रोका जाये तो अधिक दुर्गन्ध बढ़ता है, जैसा कि बंद जाजरूर[२]।

इसी प्रकार मुखादि का प्रक्षालन न करने और मुख पर कपड़ा बांधने से अधिक दुर्गन्ध होकर अधिक रोग उत्पन्न करता है, जैसा कि मेला आदि में। और न्यून दुर्गन्ध से विशेष रोग नहीं होता, यह बात प्रत्यक्ष है। इससे यह सिद्ध हुआ कि अधिक दुर्गन्ध बढ़ाने वाला अधिक अपराधी होता है। जैसा कि आप लोग दन्तधावन और स्नानादिक न करने से दुर्गन्ध बढ़ाते हो, जिस से रोगोत्पत्ति कर बुद्धि और पुरुषार्थ को नष्ट करके धर्मानुष्ठान में बाधक होते हो। जैसा कि जाजरूर के शुद्ध करने वालों की दुर्गन्ध के संग से न्यून बुद्धि होती है, वैसे ही आप लोगों की क्यों नहीं होती होगी? जब दुर्गन्ध-युक्त पुरुष की बुद्धि अति मन्द [हो जाती है] तो उसके संगियों की क्यों नहीं होती होगी?

२—जो तुम लोग कच्चा जल पीने आदि में दोष गिनते और उष्ण

१. मुख पर पट्टी बांधने वाले जैन साधुओं का उच्चारण अधिकांश में सानुनासिक हो जाता है।

२. इस शब्द का प्रयोग ''शौचालय'' के अर्थ में होता है।

में नहीं, यह भी तुम को अत्यन्त भ्रम हुआ है। क्योंकि ठण्डे-जल के जीव उष्ण जल करने में अधिक दुःख पाते हैं, और उनके शरीर रंध जल में घुट जाते हैं, जैसे सौंफ का अर्क। सिद्ध हुआ कि उक्त जल के पीने वाले मानो मांस का जल पीते हैं। और जो ठंडा जल पान करते हैं वे (उन जीवों को) गर्म जल पीनेवालों की अपेक्षा थोड़ा दुःख देते हैं। दूसरे वे जीव जठराग्नि में प्राप्त होकर भी बहुत से प्राण वायु के साथ बाहर भी निकल जाते हैं। इससे ठंडा जल पीने वाले तुमसे बहुत कम जीवों को दुःख देने वाले ठहरते हैं।

जो तुम कहो कि—न हम जल गर्म करते और न हम किसी को अपने लिये शिक्षा उष्ण करने की करते हैं। तो भी तुम इस अपराध से नहीं छूट सकते, क्योंकि जो तुम गर्म जल न लेते, न पीते और न उष्ण करने की शिक्षा करते तो, वे अधिक जल क्यों गर्म करते? जो ऐसा कहो कि—पाप करने वालों को दोष लगता है, अन्य को नहीं। यह भी कथन ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि चोरी करने वाला तो आप ही चोरी करता है परन्तु शिक्षा करने वाले बहुतों को चोर बना देते हैं, इसलिये तुम ही अधिक पापी हुए। फिर जल के गर्म करने में अग्नि जलाने और उस जल से भाप ऊपर उड़ने से भी जीवों को बहुत दुःख पहुंचता है, इस कारण यह भी तुम्हारा कथन व्यर्थ हुआ।

३—तुम्हारे मत में ऐसी-ऐसी बहुत-सी बातें अयुक्त हैं, जैसे—एक छोटे से अर्थात् पैसे भर के कंद में अनन्त जीवों का रहना। इसमें जो कोई तुम से प्रश्न करे कि जिसमें जीव रहते हैं जब उसका अन्त है, तो उसमें रहने वालों का अन्त क्यों नहीं? फिर तुमसे इसके उत्तर में केवल चुप वा हठ के और कुछ न बन पड़ेगा। यह थोड़ा-सा अर्थात् समुद्र में से बिन्दुवत् तुम्हारे मत में दोष दिखलाया है। जो तुम सन्मुख बैठ कर चर्चा करो, तो तुमको और तुम्हारे साथियों को तुम्हारे मत के दोष भली-भांति विदित हो जायं।

परन्तु जब कोई विद्वान् तुम्हारे सन्मुख तुम्हारे मत के खण्डन विषय में चर्चा करना चाहें, तो भी तुम कभी न चाहोगे। क्योंकि जो तुम्हारा मत निर्दोष होता, तो दूसरे मत वालों से संवाद करने में कभी न डरते। इसका दृष्टान्त यह है कि तुम अपनी पुस्तकों को बहुत गुप्त रखते और अपने मत वालों के सिवाय दूसरों को देखने के लिये नहीं देते। यह तुम्हारा सिद्धान्त

पुस्तक और तुम्हारे सिद्धान्तों को तुम्हारी ही बातें झूंठ कर देती हैं। जिसका चांदी का रुपया है, वह सर्राफ वा सुनारादि के दिखलाने में क्यों डरेगा? देखो, हमारा वेद मत सच्चा है, इससे हमको किसी के साथ चर्चा करने में डर नहीं होता। जैसा तुम डर के कारण हठ करते हो कि मुख पर कपड़ा बांधे विना तुम से बात नहीं करते, यह तुम्हारा केवल छल है, क्योंकि नाच न आवे आंगन टेढ़ा। **ह०—दयानन्द सरस्वती**

जब पूर्वोक्त पुरुष उक्त प्रश्नों को लेकर साधुजी के स्थान पर पहुंचे, तो क्या देखते हैं कि साधुजी बहुत-सी स्त्री और पुरुषों के मध्य में बखान[१] कर रहे हैं। तब यह लोग वहां जा बैठे। जब बखान पूर्ण हुआ, तब पण्डित छगनलालजी मन्त्री राव मसूदा ने, जो उक्त प्रश्न ले गये थे, सब लोगों के सन्मुख पढ़ कर सुना दिये। और कहा कि इनका उत्तर देना आपको योग्य है। इस पर साधुजी ने कहा कि—जो तुम लोग मुख पर पट्टी बांधो तो मैं उत्तर दूं। तब इन लोगों ने कहा कि—हम मुख पर पट्टी बांधना पाप गिनते हैं। प्रथम आप इन प्रश्नों का उत्तर दें। पट्टी का बांधना सिद्ध कर देंगे, तब हम प्रसन्नतापूर्वक यही क्या जैसा आप हम से कहेंगे, स्वीकार करेंगे। ये सुन साधु ने कहा कि—तो मैं उत्तर नहीं दे सकता, और उठकर भीतर की ओर चले गये। फिर यह लोग अपने गृह की ओर चले आये, और सब वृत्तान्त स्वामीजी वा राव साहब को सुनाय अपने-अपने निज स्थान को पधारे।

[साधु सिद्धकरण के द्वारा स्वामीजी के प्रश्नों का उत्तर]

फिर साधुजी ने तीसरे दिन सुजानमल कोठारी के हस्ते स्वामीजी के प्रश्नों का उत्तर निम्नलिखित भेजा—

प्रश्न—[२]'मुंह बांधने में क्या धर्म है।' हमको तो पाप मालूम होता है, इत्यादि।

उत्तर—जब कि मकान में अग्नि की ज्वाला निकलती है, उस मकान के दरवाजे में होकर हवा भीतर जाती है, तो हवा के जीव सब मर जाते

१. जैन साधुओं के धर्मोपदेश को राजस्थान में 'बखाण' (व्याख्यान का अपभ्रंश) कहते हैं।

२. यह जैसे के तैसे लिख दिये हैं, (जिससे जैन मत के साधुओं की विद्या भी पाठकों पर भली भांति प्रकट हो जाय।)

हैं, और बाहर उस ज्वाला का तेज कपड़े की ओट से ठंडा होकर जाता है। जैसा कि ऊना[१] (गर्म) जल की भाप बाहर एक ऊनी करी हुई चीज की भाप के निकलते समय कपड़ा की ओट दो, तो फिर ओट से बच कर भाप जावेगी, वह फिर वैसी गर्म कभी न रहेगी। वा आडा हाथ देकर देखो, तो पहला हाथ देगा उसका जलेगा वही जल की भाप निकलेगी तो दूसरी तरह जो आजू बाजू हाथ रहेगा, कभी वैसा नहीं जल सकता, यह तो प्रत्यक्ष पड़ता है और जीव-अजर-अमर हैं लेकिन वायु के जीव का शरीर है, विना शरीर के जीव नहीं रह सकता।

दूसरे खुले मुख रहने से प्रत्यक्ष दोष भी है, कि उसको सब कोई समझ सकता है, क्योंकि जो कोई बड़े आदमी के निकट बात करे तो मुंह के पल्ला लगा लेता है, क्योंकि जिससे थूक न उछले, वा अपनी दुर्गन्धता का स्वास उनके द्वारा न पहुंचे। तो आप सरीखे बुद्धिमान् होकर यह क्या सवाल पूछा? आप को भी यह तो ख्याल चाहिये कि वेद की पुस्तकों को खुले मुंह बांचना, क्या पुस्तक के ऊपर थूक वा दुर्गंध स्वास नहीं पहुंचती होगी? इस वास्ते जरूर आपको उगाड़े (खुले) मुंह रहना लाजिम नहीं। और हम तो साधु हैं, हम बेफायदा झोड़[२] नहीं करते क्योंकि यह बात पक्षपात कहलाती है। सिवाय धर्म के साधु को कुछ वास्ता नहीं। कोई हमारे निकट आवे और सुनना चाहे तो सुने, जाने आने का कुछ प्रयोजन नहीं। हां, यह पक्की दीखे कि कुछ धर्म की बात मानेंगे, तो जा सकते हैं। **—ह० सिद्धकरण**

[स्वामीजी के द्वारा साधु सिद्धकरण के प्रश्नों का उत्तर]

स्वामीजी ने इन पूर्वोक्त प्रश्नों का उत्तर दूसरे दिन, पं० वृद्धिचन्द्रजी जगन्नाथ जोशी, व्यास रामनारायण और बाबू बिहारी लाल और अन्य सरदार लोगों के हस्ते निम्नलिखित भेजा—

उत्तर—जब कि मकान में अग्नि की ज्वाला निकलती है, इत्यादि। यह तुम्हारा मुख की पट्टी बांधने का उत्तर अविद्यारूप है, क्योंकि बाहर की वायु ही सब प्राणियों का जीवन-हेतु है। विना इसके संयोग के कोई भी प्राणी नहीं जी सकता, और उनके सम्बन्ध के विना अग्नि भी नहीं

१. 'उष्ण' को मारवाड़ी में 'ऊना' कहते हैं।

२. 'झोड़' विवाद के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

जल सकता। जैसे किसी प्राणी वा जलते अग्नि को बाहर के वायु से वियुक्त करें, तो वह उसी समय मर जाता और दीपादि अग्नि भी बुझ जाता है। इससे उसको जिलाने और जलाने आदि का कारण बाहर का वायु ही है। न मानो तो बंद कर देख लो। इसलिये यह तुम्हारा अविद्या-रूपी ही उत्तर सिद्ध होता है। यद्यपि ऐसी अन्यथा बातों पर लिखना व्यर्थ है, क्योंकि जो किसी से हो ही नहीं सकता।

देखो! जो मकान के दरवाजे और छिद्र बिल्कुल बंद कर दिए जायें तो अग्नि कभी न जले। और एक ओर से ओट किया जाए, तो दूसरी ओर से जहां कि मार्ग पाता है, वहां अति वेग से चलकर वही वायु के जीवों को उसका सम्बन्ध होता है। और कपड़े की ओट से भी वह कभी ठंडा नहीं हो सकता, किन्तु वह एक ओर रुककर दूसरी ओर गर्म हो जाता है। ज्वाला की जितनी गर्मी है वह जब तक बाहर के वायु से सम्बन्ध वा संघात छूट एक-एक परमाणु पृथक् पृथक् होकर न मिल जायें, तब तक अग्नि ठंडा कैसे हो सकता है? और सर्वत्र वायु में विद्युत् रूप अग्नि भी (कि जहां वायु के शरीर वाले जीव हैं) व्याप्त हो रहा है, फिर वायुस्थ जीव क्यों नहीं मर जाते?

जब एक ओर कपड़े आदि से आडा[१] किया जाए, तो दूसरी ओर गर्म वायु अधिक इकट्ठा फैलने और पटकने आदि से शीघ्र ठंडा नहीं होता, किन्तु जो चारों ओर से खुला रहे तो शीघ्र ठंडा हो जाता है, जैसा कि मैदान की अग्नि। जब अग्नि की ओर आडा हाथ दिया जाए, तो हाथ की आड़ से दूसरी ओर गर्मी फैलेगी। आड़े हाथ करने से गर्मी कुछ भी कम नहीं हो सकती। इससे यह अविद्वानों की बात है।

देखो! कोई सूर्य की ओर हाथ करे, तो क्या सूर्य की गर्मी घट जाती है? और क्या जिस बर्तन में गर्म जल किया जाता है, उसका मुख खुला रखने से अधिक गर्मी और आधा वा तीन-भाग बन्द करने से अर्थात् आधे वा चौथे भाग से भाप अधिक और जोर से निकल कर बाहर के वायु में नहीं फैलती? और जो उसका मुख सर्वथा बन्द किया जाए, तो क्या बर्तन टूट फूट वा न उड़ जायेगा?

क्या जिसने अग्नि की ज्वाला के सामने आड़ की, तो उसकी ओर गर्मी कम होने से अग्नि के दूसरी ओर जिस किसी का हाथ वा कोई वस्तु

१. 'आडा' करने का अर्थ ओट करने से है।

हो, तो वह अधिक तप्त नहीं होती? और जब चारों ओर से आड़ कर अग्नि रोका जाये, तो गोलाकार होकर ऊपर को क्यों नहीं चढ़ेगा? और भाप के दूसरे बाजू हाथ जैसा कि इधर का जलता है वैसा उधर का न जलेगा? और हाथ की आड़ से हाथ में गर्मी इसलिए अधिक नहीं लगती कि वह गर्मी अगल बगल होके उड़ जाती है।

देखो! तुम्हारी अत्यन्त भूल है, क्योंकि जो वायु के शरीर-वाले जीव गर्म वायु से मर जाते, तो वैशाख और ज्येष्ठ मास में जब कि वायु अत्यन्त तप्त होय लू चलता है, तब वे क्या सब मर जाते हैं? और गर्म वायु के जीव जब कि पौष मास में अति शीत पड़ता है, तब वे क्या सब मर जाते हैं? इससे यह बात सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से मिथ्या ही है। क्योंकि जो ऐसा होता, तो ईश्वर इस सृष्टि में अग्नि और सूर्यादि को क्यों रचता? इससे जो तुम सत्यासत्य बातों का निश्चय करना चाहो, तो वेदादि सत्य शास्त्र पढ़ो और सुनो। जिससे यथार्थ ज्ञान पाके, धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी फल को प्राप्त हो सको, ऐसा न करके अपने मत के ग्रन्थों के विश्वास में रहोगे, तो यह उत्तम मनुष्य जन्म व्यर्थ ही नष्ट करोगे।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि, जीवों को अजर अमर मान कर फिर उनका मरण भी मानते हो। जो तुम खुला मुख रखने में प्रत्यक्ष दोष लिखते हो, तो प्रतीत होता है कि आप प्रत्यक्ष के लक्षणादि विद्या को ही नहीं जानते। इसी से किसी बड़े आदमी से बातें करने में पल्ला लगाना अच्छा समझते हो। जो ऐसा है, तो फिर वैसा क्यों नहीं करते? क्यों छोटे आदमी के सन्मुख हर वक्त मुख को बांधे रहते हो? क्या बड़े आदमी का थूंका छोटे आदमी के लग जाना अच्छा समझते हो? क्या बड़े आदमी के मुख में कस्तूरी घुली होती है, और छोटे के नहीं? यदि बड़े छोटों का विचार है, तो अपने चेलों के सन्मुख मुख क्यों बांधते हो? क्योंकि जब किसी बड़े आदमी से बोला करो, तो बांध लिया करो, सदैव ये व्यर्थ बातें क्यों किया करते हो?

देखो, इस बात को तुम नहीं जानते। बड़े आदमियों से सम्भाषण करते समय पल्ला लगाने से यह प्रयोजन है कि सभा में कभी-कभी गुप्त वार्ता करनी पड़ती है। यदि मुख खुला रखा जाये अर्थात् कपड़ा न लगावें तो अन्य मनुष्य जो निकट बैठे होयं, अवश्य सुन लें। जहां कोई तीसरा मनुष्य नहीं होता वहां बातें करने में पल्ला नहीं लगाते। और क्या पल्ला

लगाने से दुर्गन्ध रुक सकता है? इसमें इतना ही प्रयोजन है कि जो वायु को रोक के न बातें करें, तो उसके फैलने के साथ ही शब्द भी फैल जाये और कान में वायु लगने से ठीक-ठीक सुना भी न जाए। जैसा कि वायु के वेग से चलने में ठीक-ठीक सुना नहीं जाता।

देखो, कैसे अंधेर की बात है, क्या दुर्गन्ध को कान ग्रहण कर सकता है? किन्तु सुगन्ध दुर्गन्ध का ग्रहण नासिका ही से होता है। इस बात का आपने प्रयोजन ही नहीं समझा है, जैसे गान विद्या न जानने वाला ध्रुपद को समझ नहीं सकता, क्योंकि जो तो विद्या की बातें हैं, उनको विद्या से ही समझ सकता है, अविद्वान् नहीं। हम शब्द, अर्थ और सम्बन्ध को वेद समझते हैं, कागज स्याही को नहीं। और कागज स्याही को (जड़ होने से) सुगन्ध दुर्गन्ध का ज्ञान वा सम्बन्ध नहीं होता। क्या जो तुम्हारे जैनी लोगों के ग्रन्थ वा पुस्तकों के कागज वा लाख आदि हैं, उनको बनाने और लाने वालों ने मुख बन्द कर बनाया और लिखा होगा?

हम खुले मुख में वेदों का पाठ करना अत्युत्तम समझते हैं, क्योंकि मुख बांधने से स्पष्ट यथार्थ उच्चारण नहीं होता, जैसा कि तुम्हारा सब अक्षरों का नासिका से अशुद्ध उच्चारण होता है। उसका उत्तर हमने पहिले ही लिख दिया था कि निरनुनासिक को मुख बांधकर सदैव सानुनासिक बोलना शुद्ध नहीं, परन्तु इसके समझने को तो विद्या चाहिये। और जो आप साधु बनते हो, तो साधु के लक्षण क्या हैं? और आप स्वार्थी हो वा परमार्थी? जो परमार्थी हो तो स्वार्थ की इच्छा अर्थात् बेफायदा हम नहीं बोलते, ऐसा क्यों कहते? और जो स्वार्थी हो तो साधु क्यों बनते हो?

जो आपको पक्षपात नहीं होता, तो मुख पर पट्टी बांधने का झूठा आग्रह क्यों करते? कि विना मुख पर पट्टी बांधने के हम नहीं बोलते। यदि ऐसा नियम था, तो प्रथम ही प्रथम (जंगल में भ्रमण करते समय) हमसे क्यों बोले थे, कि आपका नाम क्या है? इत्यादि खुले मुख बोले। और अन्य जनों से भी बातें क्यों किया करते हो? और भोजन समय में (स्वप्रयोजन के लिये) क्यों मुख खोलते हो? क्या तुम अपने शरीर-पोषण, भोजन-छादन, मल-विसर्गादि कर्म भी मौन सिवाय नहीं समझते होंगे? यह बात मिथ्या है, क्योंकि जब हम सुनना चाहते थे, तब तो तुम सुनाने को खड़े भी न हुये। और जो तुम कहीं आते जाते नहीं, तो यहां कहां से आ गये? क्या एक ही ठौर शिलावत् स्थित रहते हो? भला जिसका रुपया

चांदी का है, उसको कच्चेपन का क्या भय है? क्या सबके सामने दिखलाने से ताम्र का हो जाता है?

क्या तुम वहीं जाते हो जहां तुम्हारी बातें विना समझे बूझे मान लेवें? हां ठीक है, तुम तो उन्हीं गोबर-गणेशों को सुना सकते हो, जो सुनते ही सत्यार्थ और प्रमाण शब्दों को सुनते ही हल्ला करके तुम को सन्तुष्ट किया करें। चाहे सत्य कहो वा असत्य, मान ही लें, जैसे दिल्ली की मिठाई। न पूछें न शंका करें न झूठ का खण्डन करें। ठीक समझ लिया, जैसे तुम और तुम्हारे सिद्धान्त हैं, मानो बालकों का खेल। जो यह मुख की पट्टी बांधने का सहज उत्तर तुम नहीं दे सकते, तो छोटे से कंद में अनन्त जीवों के होने आदि का उत्तर तुम क्या दोगे? किन्तु तुम्हारे तीर्थंकरों ने भी इन विद्या की बातों को नहीं समझा था। जो समझते होते, तो ऐसी असम्भव बातें क्यों लिख जाते?

सत्य है, जब से तुम लोगों ने वेद-विरोधी होके तदुक्त सत्य मत को छोड़ के कपोल-कल्पित असत्य मत को ग्रहण किया है, तभी से विद्यारूप प्रकाश से पृथक् होकर अविद्यारूप अंधकार में प्रविष्ट हो गये हो। इसी से ईश्वर, जीव और पृथिवी आदि तत्त्वों को यथावत् नहीं जान सकते हो। आओ, अब भी क्यों झूठे पक्षपात करके वेदोक्त सत्य मत को स्वीकार नहीं करते? और मुख पर पट्टी बांधने आदि विद्या-विरुद्ध कपोल-कल्पित बातों को क्यों नहीं छोड़ते? और अन्यथा आग्रह करते जाते हो। सत्य है कि, जो तुम लोगों के आत्माओं में वेद विद्या का थोड़ा भी प्रकाश होता, तो ऐसी निर्मूल झूठी बातों को लिखने में लेखनी कभी नहीं चलती।

और जो तुम्हारे सिद्धान्त सत्य होते, तो चर्चा करने में ऐसे झूठे हीले बहाने क्यों पकड़ते? और ऐसे अशुद्ध लेख में व्यर्थ परिश्रम क्यों करते वा कराते? अब भी जो सच्चे हो तो सन्मुख आकार थोड़े काल में सत्यासत्य का यथार्थ निश्चय क्यों नहीं कर लेते? क्योंकि **'वादिप्रतिवादिभ्यां निर्णीतोऽर्थः सिद्धान्तः'**—जो वाद-प्रतिवाद से बात सिद्ध होती है, वही मानने योग्य है। जिस किसी ने मतमतान्तर वालों से पक्ष-प्रतिपक्षपूर्वक वादानुवाद नहीं किया, वह सत्यासत्य को ठीक-ठीक कभी नहीं जान सकता। इसी लिए तुम भी ऐसा क्यों नहीं करते? परन्तु क्या करो, 'नाच न जाने आंगन टेढ़ा'। **ह०—दयानन्द सरस्वती**

यह उक्त पत्र पूर्वोक्त पुरुष जब लेकर चले, तो अनुमान २००

आदमियों के और एकत्र हो गये थे। उन्होंने पहुंचते ही साधु जी को उक्त पत्र पढ़ सुनाया, और निवेदन किया कि अब आप इसका फिर उत्तर दीजिये। परन्तु पाठकगण! उत्तर देने को तो विद्या चाहिये। न जाने पहले किसकी सहायता से उत्तर लिखा था? विशेष क्या लिखूं। साधुजी के छक्के छूट गये। अन्त को बहुत इन लोगों ने कहा सुना, तो यही मुख से निकला कि—म्हारे से तो कोई नहीं बने, आपां तो साधु हां।[1] जब लोगों ने देखा कि जब साधु ही ने अपने मुख से हार मान ली, तो अब विशेष कहना उचित नहीं। यह समझ कर 'नमस्ते' कह के चले आये और सर्व वृत्तान्त रावसाहब और स्वामीजी से निवेदन कर अपने अपने निज स्थानों को चले गये।

ह०—पं० वृद्धिचन्द श्रीमाली, मसूदा

शास्त्रार्थ-मूसदा (२)

[यह शास्त्रार्थ बाबू बिहारीलाल ईसाई के साथ राव साहब बहादुरसिंह जी मसूदा का श्री स्वामी दयानन्दजी सरस्वती की मध्यस्थता में सम्पन्न हुआ।]

इसके पश्चात् सावन सुदी ४ सं० १९३८ को फिर बाबू बिहारी लाल ईसाई नये शहर (ब्यावर) से स्वामीजी से मिलने को आया। थोड़ी देर के पश्चात् बातों ही बातों में धर्म-विषय की चर्चा होने लगी। तिस पर श्रीयुत रावसाहब ने बाबू बिहारीलाल से कहा कि—आइये, मेरी और आपकी परस्पर वार्ता होनी उचित है। क्योंकि यदि आप के पादरी साहब आते, तो उनसे स्वामीजी वार्तालाप करते। सो अब न्याययुक्त उचित यही है कि आप पादरी साहब के शिष्य और मैं स्वामीजी का। इसलिये मुझसे और आपसे ही वार्ता होनी अत्युत्तम है, और स्वामीजी हम दोनों के मध्यस्थ रहेंगे। यह बात रावसाहब की बाबू बिहारीलाल ने स्वीकार कर स्वामीजी को मध्यस्थ किया, और इस प्रकार से प्रश्नोत्तर होने लगे—

रावसाहब बहादुरसिंहजी—तुम्हारा ईमान पूरा है वा नहीं?

बाबू बिहारीलाल—हमारा विश्वास प्रभु परमेश्वर पर है।

रा०[2]—तुम्हारा विश्वास पूरा है, वा अधूरा?

१. यह वाक्य मारवाड़ी भाषा का है।

२. बा० से बाबू बिहारीलाल (देशी पादरी) तथा रा० से राव साहब बहादुरसिंह जी मसूदा अभिप्रेत हैं।

बा०—हमारा विश्वास पूरा है।

रा०—'जो तुम्हारा पूरा विश्वास है, तो इस पहाड़ को यहां से हटा दो, क्योंकि आप लोगों के नये नियम के पर्व १० आयत २० में मसीह उपदेश करते हैं कि—'अगर तुम लोगों में राई बराबर विश्वास होय तो, इस पहाड़ को उठाय दूर ले जा सकते हो'।

बा०—विश्वास दो तरह का है, उनमें से आप कौनसा पूछते हो?

रा०—वे दो विश्वास कौन-कौन से हैं?

बा०—पहला विश्वास यह है कि—ईश्वर को अपना सरजनहार समझना। दूसरा यह कि—किसी की बड़ाई की तरफ झुक कर विश्वास करना। जैसे एक आदमी ने 'कोसालस' के पास आकर कुछ रुपये नज़र किये, और कहा कि—मुझे भी यही ताकत मिले। उसने कहा कि—ताकत ईश्वर की रुपये-पैसे से नहीं मिलती।

रा०—आप चाहे जौन से विश्वास व ईमान से पहाड़ को हटा हो। यदि नहीं हटा सकते, तो आप में राई बराबर भी विश्वास नहीं।

बा०—इस प्रश्न का तात्पर्य हर एक ईसाई पर नहीं लग सकता। इसलिए कि उस वक्त मसीह के शागिर्दगान अपना बड़प्पन पाने के लिये यह अरज की, ताहम भी उनका विश्वास प्रभु पर था। और यह बात उनके बड़प्पन पर थी, और मसीह ने भी उस बड़प्पन पर जवाब दिया। अब मेरा विश्वास, जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूँ, प्रभु परमेश्वर पर पूरा है कि—वह हमारा पैदा करने वाला और मुक्तिदाता है। और इस बात की अभिलाषा हम नहीं रखते कि हम करामाती हो जायें।

रा०—हर एक ईसाई का विश्वास माननीय एक सा है वा भिन्न-भिन्न? जो एक सा है, तो सब ईसाइयों में उस विश्वास के राई भर अंश का फल कहने मात्र से पहाड़ का हट जाना क्यों नहीं? और परमेश्वर पर आपका पूर्ण विश्वास है, तो क्या उस विश्वास में वह सामर्थ्य नहीं है? और ईसाइमसीह जिस विश्वास के बल से आश्चर्य कर्म करते थे, वह विश्वास यही आपका है जिसको आप मानते हैं, वा दूसरा? यदि दूसरा अर्थात् भिन्न है, तो ईसामसीह ने आप लोगों से कपट रक्खा, कि किसी को अपना विश्वास न बताया और जो बताया तो उनमें और आप लोगों में उस विश्वास का फल इस वक्त क्यों नहीं दृष्टि पड़ता? मुझको तो यह निश्चय होता है कि ईसामसीह में किसी का वह विश्वास पूरा

प्राप्त कराने का सामर्थ्य नहीं है। जो होता तो उनके साथ बारह शिष्य प्रत्यक्ष थे। जब उनको ही विश्वास पूरा न करा सका, तो अब आप लोगों का विश्वास पूरा क्यों कर हो सकता है, वा करा सकता है।

जब ऐसा है, तो तुम लोगों को ईसामसीह मुक्ति आदि भी नहीं दे सकता। जो आप उसके पैदा किये हुए हैं, तो मर भी जायेंगे। क्योंकि जो पैदा होता है, उसका नाश भी अवश्य होता है। जब नाश हुआ तो जिस पर आप विश्वास कर रहे हैं कि हम को मुक्ति मिलेगी, वह व्यर्थ हो जायेगा। क्योंकि मुक्ति को भोगना नाशधर्म वाला है, तो नित्य-सुख जो आपके मतानुसार है, उसको कौन भोगेगा? जो आप कहें कि—उत्पत्ति तो होती ही है, नाश नहीं होता। यह बात सृष्टिक्रम और विद्या के विरुद्ध है कि जिसकी उत्पत्ति तो होय और नाश न हो।

प्रभु के पूरे विश्वास से बड़प्पन और करामात प्राप्त होती है, वा नहीं? जो होती, तो आपको इस पहाड़ का हटा देना अवश्य होगा, और जो नहीं तो परमश्वेर-विश्वास में वैसा बड़प्पन नहीं रहा। तो अब आप बतलाइए कि वह फिर दूसरा विश्वास कौनसा है, कि जिससे बड़प्पन और करामात प्राप्त होती है? क्या परमेश्वर के विश्वास से भी किसी अन्य का विश्वास बड़ा है? और क्या परमेश्वर से भी कोई वस्तु उत्तम है? वा परमेश्वर में करामात है वा नहीं? जो है तो अपने ही विश्वास से वा अन्य के? और उसके विश्वासियों में भी वैसा ही उचित होता है वा अन्य?

जब खुद ईसामसीह ने उनसे कहा कि जो तुम में राई भर ईमान होता, तो इस पहाड़ से कहते कि यहां से चला जा, तो चला जाता। इससे सिद्ध होता है कि उनमें राई भर भी ईमान न था। तो ईमानरहितों की एकत्र की वा बनाई वा लिखी हुई अंजील भी विश्वास के योग्य कैसे हो सकती है? जो कहो कि—ईसामसीह के मरने के पश्चात् (१२ शागिर्दों का) ईमान दुरुस्त हो गया था, पश्चात् अंजील बनाई। यह भी ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि जो उसके सामने अर्थात् जिनको ईसामसीह ईमानदार बनाना चाहता और परिश्रम करता था, तो भी नहीं बन सके, तो पश्चात् कैसे बन सकते हैं?

बा०—स्वामी जी महाराज! मैं इसका उत्तर अभी नहीं दे सकता। अब मैं अपने गृह नये शहर (ब्यावर) को जाता हूँ। पादरी साहब[१] से

१. यूरोपीयन पादरी शूलब्रेड से अभिप्राय है।

पूछ कर उत्तर दूंगा।

इतना कह बाबू बिहारीलाल ईसाई थोड़ी देर पश्चात् अपने गृह की ओर पधारे, परन्तु उक्त लेख का उत्तर फिर आकर अर्थात् आज की तारीख तक न दिया। **ह०—पं० वृद्धिचन्द श्रीमाली मसूदा**

[एक कबीरपन्थी साधु से प्रश्नोत्तर]

एक साधु कबीरपन्थी नये शहर (ब्यावर) से स्वामीजी के पास आया, और परस्पर प्रश्नोत्तर होने लगे। प्रथम स्वामीजी ने कहा कि—आपके मत के कितने ग्रन्थ हैं? साधुजी ने कहा—१४ करोड़ पुस्तक हैं। स्वामीजी ने कहा—यह बात मिथ्या है। कारण इतने ग्रन्थों की संख्या और रखने को कितनी जगह चाहिये? फिर स्वामीजी ने पूछा कि—तुम्हारे कबीर कौन थे? और जब तुम कबीर-मत में होते हो, तब तुम उनकी प्रसादी और गुरु का उच्छिष्ट भी खाते हो कि नहीं? साधु—उच्छिष्ट खाते हैं। कबीर का जन्म नहीं है, अजन्मा है, मां बाप भी नहीं। स्वामीजी—कबीरजी काशी में कुकर्म से पैदा हुये थे[१] इस कारण उसकी मां ने उसे बाहर फेंक दिया था। उसी समय वहां पर (जहां कबीर पड़ा था) एक जुलाहा, जो जाति से मुसलमान था, आ निकला और कबीर को उठाय घर में ले आया और निज पुत्र सा जान उसको पाला, और उसको समर्थवान् किया। अब देखिये कि उसका जन्म भी हुआ और मां बाप भी ठहरे। उस बात को सुन साधु चुप हो रहा और कुछ उत्तर न दिया।

फिर श्रावण सुदी १५ सं० १९३८ को रावसाहब की ओर से सोमनगरी पर बड़ी धूमधाम और उत्साह सहित हवन हुआ, जिसमें ५०० आदमियों के लगभग एकत्र थे। हवन के पश्चात् ब्रह्मभोज भी सत्कार-पूर्वक कराया गया। फिर निम्नलिखित पुरुषों ने प्रणपूर्वक सबके सन्मुख वेदधर्म को स्वीकार किया। फिर उसी समय स्वामीजी से उचित पुरुषों ने यज्ञोपवीत लेने की अभिलाषा प्रकट की। इस कारण श्री स्वामीजी महाराज ने योग्यपुरुषों को यज्ञोपवीत भी दिया। यज्ञोपवीत लेने वाले महानुभावों में निम्नलिखित के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं—

ठाकुर—१. प्रतापसिंह केलू के २. अखेसिंह जी वेगलियावास के

१. कबीर के बारे में यह बात प्रसिद्ध है कि वे एक विधवा ब्राह्मणी की जारज सन्तान थे।

३. चैनसिंह जी आसीन ४. प्रतापसिंहजी वरवाड़े ५. माधोसिंहजी वेगलियावास ६. अदूलसिंहजी किपाय ७. प्रतापसिंहजी मेरता ८. नाहरसिंह जी जामोड़ा ९. उगमसिंहजी किशनगढ़ १०. चतुर सिंह जी गहलोत मसूदा ११. हरि सिंहजी मेरता १२. लेखसिंहजी किपाय १३. गम्भीर जी थावड़ा १४. नामदेव जी जगपुरा १५. बलवन्तसिंह जी किपाय १६. महताब जी थाबड़ा वाला।

जैनी—१. राजमल्लजी कोठारी २. किशनजी कोठारी ३. अनन्तजी कोठारी ४. श्योदानजी कोठारी ५. हीरालालजी तातेड़ ६. कजोड़जी चोरड़िया ७. छगनजी बोहरा ८. पानजी कोठारी ९. अमरसिंह जी कोठारी १०. बल्लभजी ११. राजजी मेहता १२. ऋषभदासजी वापना १३. हंसराजजी कोठारी १४. बालकिशनजी मेहता १५. किशनजी कोठारी १६. श्योदानजी मेहता १७. श्योबागजी कोठारी १८. रामचन्द्रजी अग्रवाल १९. ओनाडजी पिरोहित २०. लालजी पिरोहित लोढ़ाने का २१. बालकिशनजी मेहता २२. औतारजी सोकला २३. कल्याणसिंहजी कोठारी २४. जसवन्तसिंहजी कोठारी २५. किसनाजी २६. छगनजी कोठारी २७. कजोड़ीमल्लजी नार २८. गोपालजी धूत।

अन्य—१. चंपालालजी कायस्थ २. छुट्टनलालजी कायस्थ ३. कल्लूजी चारण ४. रामदयालजी ब्राह्मण ५. श्योबख्शजी आदि।

उपसंहार—इसी प्रकार यहां आनन्द मंगल होते रहे। इसी अवसर में रायपुर के ठाकुर का निमंत्रणपत्र स्वामीजी के पास आया। इस कारण श्रीमद् आर्यकुलभूषण दिग्विजयी श्री स्वामीजी महाराज ने रायपुर जाने का विचार ठाना। जब श्री रावसाहबजी ने श्री स्वामीजी से निवेदन किया कि महाराज! आप का एक व्याख्यान महलों में हो जाए, तो अति उत्तम है। इस बात को श्रीस्वामीजी ने स्वीकार किया और भाद्र वदी ८ को महाराज का व्याख्यान राजनीति विषय पर महलों में हुआ। तहां बड़ा आनन्द रहा। व्याख्यान के पश्चात् श्री रावसाहब ने ५०० रु० वेद-भाष्य की सहायता में स्वामीजी की भेंट किये।

ह०—पं० वृद्धिचन्द श्रीमाली

मसूदा संवत् १९३८ वि०